D.1

श्री

राम-गीता

हरि ॐ तत्सत्

जापा मह्है कई जुग बीते, अजपा में सब परिया। अजपा जाप। जुम्या नहीं आवे सोई नाम से लिया॥ लिया। अजपा जाप जो मुख जो प्याप नहीं आता केवल मन तथा आत्मा से नापे और नासिका के मध्य में श्वास श्वास पर मन तथा सुरत में होता है। यह आत्मा को शुद्ध करनेवाला यह चलते फिरते उठते बैठते बाहर भीतर सदैव दिन रात होता है। सा धक को श्वास श्वास पर ध्यान रखना चाहिये। २१६०० श्वास अह रात्र में होते हैं। ओहं सोहं तत्सत हंस इसी श्वास प्रश्वास में समझना चाहिये। ब्रह्मज्ञान को जाप है। अजपा सोहं साधो परमहंस कोई जानत है, जाको मता अगाधो। नाभि नासिका माहि है, सोहं सोहं का जाप। सोई अजपा जाप है, छुटै पुन अरु पाप।

॥ सीताराम ॥

श्रीरामगीता

(सानुवाद)

यावन्न पश्येदखिलं मदात्मकं
तावन्मदाराधनतत्परो भवेत् ।

श्रीहरिः

विषय-सूची

विषय | पृष्ठ-संख्या

श्रीरामपञ्चायतन

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गं सीतासमारोपितवामभागम् ।
पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम् ॥

ॐ

श्रीसीतारामचन्द्राभ्यां नमः

रामगीता

नीलोत्पलनिभो रामो लक्ष्मणः कैरवोपमः ।
मानसे राजतां मे तौ बोधवैराग्यविग्रहौ ॥

उपोद्घात

श्रीमहादेव उवाच

ततो जगन्मङ्गलमङ्गलात्मना
विधाय रामायणकीर्तिमुत्तमाम् ।
चचार पूर्वाचरितं रघूत्तमो
राजर्षिवर्यैरभिसेवितं यथा ॥ १ ॥

श्रीमहादेवजी बोले— -हे पार्वति ! तदनन्तर रघु-श्रेष्ठ भगवान् राम, संसारके मङ्गलके लिये धारण किये अपने दिव्यमङ्गल देहसे रामायणरूप अति उत्तम

कीर्तिकी स्थापना कर पूर्वकालमें राजर्षिश्रेष्ठोंने जैसा आचरण किया है वैसा ही स्वयं भी करने लगे ॥१॥

सौमित्रिणा पृष्ट उदारबुद्धिना
रामः कथाः प्राह पुरातनीः शुभाः ।
राज्ञः प्रमत्तस्य नृगस्य शापतो
द्विजस्य तिर्यक्त्वमथाह राघवः ॥ २ ॥

उदारबुद्धि लक्ष्मणजीके पूछनेपर वे प्राचीन उत्तम कथाएँ सुनाया करते थे। इसी प्रसङ्गमें श्रीरघुनाथजीने, राजा नृगको प्रमादवश ब्राह्मणके शापसे तिर्यग्योनि प्राप्त होनेका वृत्तान्त भी सुनाया ॥ २ ॥

कदाचिदेकान्त उपस्थितं प्रभुं
रामं रमालालितपादपङ्कजम् ।
सौमित्रिरासादितशुद्धभावनः
प्रणम्य भक्त्या विनयान्वितोऽब्रवीत् ॥ ३ ॥

किसी दिन, भगवान् राम, जिनके चरणकमलोंकी सेवा साक्षात् श्रीलक्ष्मीजी करती हैं, एकान्तमें बैठे हुए थे। उस समय शुद्ध विचारवाले लक्ष्मणजीने

(उनके पास जा) उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणाम कर अति विनीतभावसे कहा—॥ ३ ॥

त्वं शुद्धबोधोऽसि हि सर्वदेहिना-
मात्मास्यधीशोऽसि निराकृतिः स्वयम् ।
प्रतीयसे ज्ञानदृशां महामते
पादाब्जभृङ्गाहितसङ्गसङ्गिनाम् ॥४॥

"हे महामते ! आप शुद्धज्ञानस्वरूप, समस्त देहधारियोंके आत्मा, सबके स्वामी और स्वरूपसे निराकार हैं । जो आपके चरणकमलोंके लिये भ्रमररूप हैं उन परमभागवतोंके सहवासके रसिकोंको ही आप ज्ञानदृष्टिसे दिखलायी देते हैं ॥ ४ ॥

अहं प्रपन्नोऽस्मि पदाम्बुजं प्रभो
भवापवर्गं तव योगिभावितम् ।
यथाञ्जसाज्ञानमपारवारिधिं
सुखं तरिष्यामि तथानुशाधि माम् ॥ ५ ॥

हे प्रभो ! योगिजन जिनका निरन्तर चिन्तन करते हैं, संसारसे छुड़ानेवाले उन आपके चरणकमलोंकी

मैं शरण हूँ, आप मुझे ऐसा उपदेश दीजिये, जिससे मैं सुगमतासे ही अज्ञानरूपी अपार समुद्रके पार हो जाऊँ" ॥ ५ ॥

उपदेशका आरम्भ

श्रुत्वाथ सौमित्रिवचोऽखिलं तदा
प्राह प्रपन्नार्तिहरः प्रसन्नधीः ।
विज्ञानमज्ञानतमःप्रशान्तये
श्रुतिप्रपन्नं क्षितिपालभूषणः ॥ ६ ॥

श्रीलक्ष्मणजीकी ये सारी बातें सुनकर शरणागत-वत्सल भूपालशिरोमणि भगवान् राम सुननेके लिये उत्सुक हुए लक्ष्मणको उनके अज्ञानान्धकारका नाश करनेके लिये प्रसन्नचित्तसे ज्ञानोपदेश करने लगे ॥ ६ ॥

गुरूपसत्ति

आदौ स्ववर्णाश्रमवर्णिताः क्रियाः
कृत्वा समासादितशुद्धमानसः ।

समाप्य तत्पूर्वमुपात्तसाधनः
समाश्रयेत्सद्गुरुमात्मलब्धये ॥ ७ ॥

(वे बोले—) सबसे पहले अपने-अपने वर्ण और आश्रमके लिये (शास्त्रोंमें) बतलायी हुई क्रियाओंका यथावत् पालनकर चित्त शुद्ध हो जानेपर उन कर्मोंको छोड़ दे और शम-दमादि साधनोंसे सम्पन्न हो आत्मज्ञानकी प्राप्तिके लिये सद्गुरुकी शरणमें जाय । ७ ।

ज्ञान और कर्मकी मीमांसा

क्रिया शरीरोद्भवहेतुरादृता
प्रियाप्रियौ तौ भवतः सुरागिणः ।
धर्मेतरौ तत्र पुनः शरीरकं
पुनः क्रिया चक्रवदीर्यते भवः ॥ ८ ॥

कर्म देहान्तरकी प्राप्तिके लिये ही स्वीकार किये गये हैं, क्योंकि उनमें प्रेम रखनेवाले पुरुषोंसे इष्ट-अनिष्ट दोनों ही प्रकारकी क्रियाएँ होती हैं । उनसे धर्म और अधर्म दोनोंहीकी प्राप्ति होती है और उनके कारण

शरीर प्राप्त होता है जिससे फिर कर्म होते हैं। इसी प्रकार यह संसार चक्रके समान चलता रहता है ॥ ८ ॥

अज्ञानमेवास्य हि मूलकारणं
तद्धानमेवात्र विधौ विधीयते।
विद्यैव तन्नाशविधौ पटीयसी
न कर्म तज्जं सविरोधमीरितम् ॥ ९ ॥

संसारका मूल कारण अज्ञान ही है और इन (शास्त्रीय) विधिवाक्योंमें उस (अज्ञान) का नाश ही (संसारसे मुक्त होनेका) उपाय बतलाया गया है। अज्ञानका नाश करनेमें ज्ञान ही समर्थ है, कर्म नहीं, क्योंकि उस (अज्ञान) से उत्पन्न होनेवाला कर्म उसका विरोधी नहीं हो सकता * ॥ ९ ॥

* 'सन्निपातलक्षणो विधिरनिमित्तं तद्विघातस्य' अर्थात् जो कार्य जिस सम्बन्धसे उत्पन्न होता है वह उस सम्बन्धके नाशका कारण नहीं हो सकता। इसी न्यायके अनुसार अज्ञानसे उत्पन्न कर्मके द्वारा अज्ञान नष्ट नहीं हो सकता।

नाज्ञानहानिर्न च रागसंक्षयो
भवेत्ततः कर्म सदोषमुद्भवेत् ।
ततः पुनः संसृतिरप्यवारिता
तस्माद्बुधो ज्ञानविचारवान्भवेत् ॥१०॥

कर्मद्वारा अज्ञानका नाश अथवा रागका क्षय नहीं हो सकता बल्कि उससे दूसरे सदोष कर्मकी उत्पत्ति होती है । उससे पुनः संसारकी प्राप्ति होना अनिवार्य है । इसलिये बुद्धिमान्को ज्ञानविचारमें ही तत्पर होना चाहिये ॥ १० ॥

ननु क्रिया वेदमुखेन चोदिता
तथैव विद्या पुरुषार्थसाधनम् ।
कर्तव्यता प्राणभृतः प्रचोदिता
विद्यासहायत्वमुपैति सा पुनः ॥११॥
कर्माकृतौ दोषमपि श्रुतिर्जगौ
तस्मात्सदा कार्यमिदं मुमुक्षुणा ।
ननु स्वतन्त्रा ध्रुवकार्यकारिणी
विद्या न किञ्चिन्मनसाप्यपेक्षते ॥१२॥

न सत्यकार्योऽपि हि यद्वदध्वरः
प्रकाङ्क्षतेऽन्यानपि कारकादिकान् ।
तथैव विद्या विधितः प्रकाशितै-
र्विशिष्यते कर्मभिरेव मुक्तये ॥१३॥

कुछ वितर्कवादी ऐसा कहते हैं कि—जिस प्रकार वेदके कथनानुसार ज्ञान पुरुषार्थका साधक है वैसे ही कर्म वेदविहित हैं; और प्राणियोंके लिये कर्मोंकी अवश्यकर्तव्यताका विधान भी है, इसलिये वे कर्म ज्ञानके सहकारी हो जाते हैं। साथ ही श्रुतिने कर्म न करनेमें दोष भी बतलाया है; इसलिये मुमुक्षुको कर्म सदा ही करते रहना चाहिये और यदि कोई कहे कि ज्ञान स्वतन्त्र है एवं निश्चय ही अपना फल देनेवाला है, उसे मनसे भी किसी औरकी सहायताकी आवश्यकता नहीं है, तो उसका यह कहना ठीक नहीं, क्योंकि जिस प्रकार (वेदोक्त) यह सत्य कर्म होनेपर भी अन्य कारकादिकी अपेक्षा करता ही है, उसी प्रकार विधिसे प्रकाशित कर्मोंके द्वारा ही ज्ञान

मुक्तिका साधक हो सकता है (अतः कर्मोंका त्याग उचित नहीं है) ॥ ११-१३ ॥

केचिद्वदन्तीति वितर्कवादिन-
स्तदप्यसद्दृष्टविरोधकारणात् ।
देहाभिमानादभिवर्धते क्रिया
विद्या गताहङ्कृतितः प्रसिद्ध्यति ॥१४॥

(सिद्धान्ती—) ऐसा जो कोई कुतर्की कहते हैं उनके कथनमें प्रत्यक्ष विरोध होनेके कारण वह ठीक नहीं है, क्योंकि कर्म देहाभिमानसे होता है और ज्ञान अहंकारके नाश होनेपर सिद्ध होता है ॥ १४ ॥

विशुद्धविज्ञानविरोचनाञ्चिता
विद्यात्मवृत्तिश्चरमेति भण्यते ।
उदेति कर्माखिलकारकादिभि-
र्निहन्ति विद्याखिलकारकादिकम् ॥१५॥

(वेदान्तवाक्योंका विचार करते-करते) विशुद्ध विज्ञानके प्रकाशसे उद्भासित जो चरम आत्मवृत्ति

होती है, उसीका नाम विद्या (आत्मज्ञान) है । इसके अतिरिक्त कर्म सम्पूर्ण कारकादिकी सहायतासे होता है; किन्तु विद्या समस्त कारकादिका (अनित्यत्वकी भावनाद्वारा) नाश कर देती है ॥ १५ ॥

तस्मात्त्यजेत्कार्यमशेषतः सुधी-
र्विद्याविरोधान्न समुच्चयो भवेत् ।
आत्मानुसन्धानपरायणः सदा
निवृत्तसर्वेन्द्रियवृत्तिगोचरः ॥१६॥

इसलिये समस्त इन्द्रियोंके विषयोंसे निवृत्त होकर निरन्तर आत्मानुसन्धानमें लगा हुआ बुद्धिमान् पुरुष सम्पूर्ण कर्मोंका सर्वथा त्याग कर दे । क्योंकि विद्याका विरोधी होनेके कारण कर्मका उसके साथ समुच्चय नहीं हो सकता ॥ १६ ॥

यावच्छरीरादिषु माययात्मधी-
स्तावद्विधेयो विधिवादकर्मणाम् ।
नेतीति वाक्यैरखिलं निषिध्य, त-
ज्ज्ञात्वा परात्मानमथ त्यजेत्क्रियाः ॥१७॥

जबतक मायासे मोहित रहनेके कारण मनुष्यका शरीरादिमें आत्मभाव है तभीतक उसे वैदिक कर्मानुष्ठान कर्तव्य है। 'नेति-नेति' आदि वाक्योंसे सम्पूर्ण अनात्म-वस्तुओंका निषेध करके अपने परमात्मस्वरूपको जान लेनेपर फिर उसे समस्त कर्मोंको छोड़ देना चाहिये १७

यदा परात्मात्मविभेदभेदकं
विज्ञानमात्मन्यवभाति भास्वरम्।
तदैव माया प्रविलीयतेऽञ्जसा
सकारका कारणमात्मसंसृतेः ॥१८॥

जिस समय परमात्मा और जीवात्माके भेदको दूर करनेवाला प्रकाशमय विज्ञान अन्तःकरणमें स्पष्टतया भासित होने लगता है, उसी समय आत्माके लिये संसार-प्राप्तिकी कारण माया अनायास ही कारकादिके सहित लीन हो जाती है॥ १८ ॥

श्रुतिप्रमाणाभिविनाशिता च सा
कथं भविष्यत्यपि कार्यकारिणी।

विज्ञानमात्रादमलाद्द्वितीयत-
स्तस्मादविद्या न पुनर्भविष्यति ॥१९॥

श्रुति-प्रमाणसे उसके नष्ट कर दिये जानेपर फिर वह किस प्रकार अपना कार्य करनेमें समर्थ हो सकती है ? इसलिये उस एकमात्र निर्मल ज्ञानकी प्राप्ति होनेपर फिर अविद्या उत्पन्न नहीं हो सकती ॥ १९ ॥

यदि स्म नष्टा न पुनः प्रसूयते
कर्ताहमस्येति मतिः कथं भवेत् ।
तस्मात्स्वतन्त्रा न किमप्यपेक्षते
विद्याविमोक्षाय विभाति केवला ॥२०॥

जब एक बार नष्ट हो जानेपर अविद्याका फिर जन्म ही नहीं होता तो बोधवान्‌को 'मैं कर्ता हूँ' ऐसी बुद्धि कैसे हो सकती है ? इसलिये ज्ञान स्वतन्त्र है, उसे जीवके मोक्षके लिये किसी और (कर्मादि) की अपेक्षा नहीं है, वह स्वयं अकेला ही उसके लिये समर्थ है ॥२०॥

सा तैत्तिरीयश्रुतिराह सादरं
न्यासं प्रशस्ताखिलकर्मणां स्फुटम् ।

एतावदित्याह च वाजिनां श्रुति-
र्ज्ञानं विमोक्षाय न कर्म साधनम् ॥ २१ ॥

इसके सिवा तैत्तिरीय शाखाकी प्रसिद्ध श्रुति* भी स्पष्ट कहती है कि समस्त कर्मोंका त्याग करना ही अच्छा है, तथा 'एतावत्' इत्यादि वाजसनेयी शाखाकी श्रुति† भी कहती है कि मोक्षका साधन ज्ञान ही है, कर्म नहीं ॥ २१ ॥

विद्यासमत्वेन तु दर्शितस्त्वया
क्रतुर्न दृष्टान्त उदाहृतः समः ।
फलैः पृथक्त्वाद्बहुकारकैः क्रतुः
संसाध्यते ज्ञानमतो विपर्ययम् ॥२२॥

और तुमने जो ज्ञानकी समानतामें यज्ञादिका दृष्टान्त दिया सो ठीक नहीं है, क्योंकि उन दोनोंके फल अलग-अलग हैं। इसके अतिरिक्त यज्ञ तो

* 'न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः ।' (तै० आ० प्र० १० अ० १०)

† 'एतावदरे खल्वमृतत्वम्।' (बृ०उ०४।५।१२)

(होता, ऋत्विक्, यजमान आदि) बहुत-से कारकोंसे सिद्ध होता है और ज्ञान इससे विपरीत है (अर्थात् वह कारकादिसे साध्य नहीं है) ॥ २२ ॥

सप्रत्यवायो ह्यहमित्यनात्मधी-
रज्ञप्रसिद्धा न तु तत्त्वदर्शिनः ।
तस्माद्बुधैस्त्याज्यमविक्रियात्मभि-
र्विधानतः कर्म विधिप्रकाशितम् ॥२३॥

(कर्मके त्याग करनेसे) मैं अवश्य प्रायश्चित्तभागी होऊँगा—ऐसी अनात्म-बुद्धि अज्ञानियोंको हुआ करती है, तत्त्वज्ञानीको नहीं। इसलिये विकाररहित चित्तवाले बोधवान् पुरुषको विहित कर्मोंका भी विधिपूर्वक त्याग कर देना चाहिये ॥ २३ ॥

महावाक्य-विचार

श्रद्धान्वितस्तत्त्वमसीति वाक्यतो
गुरोः प्रसादादपि शुद्धमानसः ।
विज्ञाय चैकात्म्यमथात्मजीवयोः
सुखी भवेन्मेरुरिवाप्रकम्पनः ॥ २४ ॥

फिर शुद्धचित्त होकर श्रद्धापूर्वक गुरुकी कृपासे 'तत्त्वमसि' इस महावाक्यके द्वारा परमात्मा और जीवात्माकी एकता जानकर सुमेरुके समान निश्चल एवं सुखी हो जाय ॥ २४ ॥

आदौ पदार्थावगतिर्हि कारणं
वाक्यार्थविज्ञानविधौ विधानतः ।
तत्त्वम्पदार्थौ परमात्मजीवका-
वसीति चैकात्म्यमथानयोर्भवेत् ॥ २५ ॥

यह नियम ही है कि प्रत्येक वाक्यका अर्थ जाननेमें पहले उसके पदोंके अर्थका ज्ञान ही कारण है । इस 'तत्त्वमसि' महावाक्यके 'तत्' और 'त्वम्' पद क्रमसे परमात्मा और जीवात्माके वाचक हैं और 'असि' उन दोनोंकी एकता करता है ॥ २५ ॥

प्रत्यक्परोक्षादिविरोधमात्मनो-
र्विहाय सङ्गृह्य तयोश्चिदात्मताम् ।
संशोधितां लक्षणया च लक्षितां
ज्ञात्वा स्वमात्मानमथाद्वयो भवेत् ॥२६॥

इन दोनों (जीवात्मा और परमात्मा) में जीवात्मा प्रत्यक् (अन्तःकरणका साक्षी) है और परमात्मा परोक्ष (इन्द्रियातीत) है, इस (वाच्यार्थरूप) विरोधको छोड़कर और लक्षणावृत्तिसे लक्षित उनकी शुद्ध चेतनताको ग्रहणकर उसे ही अपना आत्मा जाने और इस प्रकार एकीभावसे स्थित हो ॥ २६ ॥

एकात्मकत्वाज्जहती न सम्भवे-
त्तथाजहल्लक्षणता विरोधतः ।
सोऽयम्पदार्थाविव भागलक्षणा
युज्येत तत्त्वम्पदयोरदोषतः ॥ २७॥

इन 'तत्' और 'त्वम्' पदोंमें एकरूप होनेके कारण जहती लक्षणा नहीं हो सकती और परस्पर-विरोध होनेके कारण अजहल्लक्षणा भी नहीं हो सकती। इसलिये 'सोऽयम्' (यह वही है) इन दोनों पदोंके अर्थकी भाँति इन तत् और त्वम् पदोंमें भी भागत्यागलक्षणा ही निर्दोषतासे हो सकती है* ॥ २७ ॥

* जहाँ शब्दोंके वाच्यार्थ (अर्थात् उनकी शक्तिवृत्तिसे

आत्मा और उसकी उपाधि

रसादिपञ्चीकृतभूतसम्भवं
भोगालयं दुःखसुखादिकर्मणाम् ।
शरीरमाद्यन्तवदादिकर्मजं
मायामयं स्थूलमुपाधिमात्मनः ॥ २८ ॥

सिद्ध होनेवाले अर्थ) को छोड़कर दूसरा अर्थ लिया जाता है वहाँ लक्षणावृत्ति होती है। वह जहती, अजहती और जहत्यजहती नामसे तीन प्रकारकी है। जहती-लक्षणामें शब्दके वाच्यार्थका सर्वथा त्याग करके उसका बिल्कुल नया ही अर्थ किया जाता है। जैसे 'गङ्गायां घोषः' (गङ्गा-जीपर पशुशाला है) इस वाक्यके वाच्यार्थसे गङ्गाजीके प्रवाहपर पशुशालाका होना सिद्ध होता है। परन्तु यह सर्वथा असम्भव है। इसलिये यहाँ 'गङ्गा' शब्दका अर्थ 'गङ्गाप्रवाह' न करके 'गङ्गातीर' किया जाता है। परन्तु 'तत्' और 'त्वम्' पदके वाच्यार्थ 'ईश्वर' और 'जीव' का सर्वथा त्याग कर देनेसे उन दोनोंकी चेतनताका भी त्याग हो जाता है और चेतनताकी एकता ही अभीष्ट है; इसलिये जहती लक्षणासे इन पदोंके अर्थकी एकता नहीं हो सकती। अजहती लक्षणामें वाच्यार्थका त्याग न करके उसके साथ

सूक्ष्मं मनो बुद्धिदशेन्द्रियैर्युतं
प्राणैरपञ्चीकृतभूतसम्भवम् ।
भोक्तुः सुखादेरनुसाधनं भवे-
च्छरीरमन्यद्विदुरात्मनो बुधाः ॥ २९ ॥

पृथ्वी आदि पञ्चीकृत भूतोंसे उत्पन्न हुए सुख-दुःखादि कर्म-भोगोंके आश्रय और पूर्वोपार्जित कर्म-फलसे प्राप्त होनेवाले इस मायामय आदि-अन्तवान्

अन्य अर्थ भी ग्रहण किया जाता है। जैसे 'काकेभ्यो दधि रक्ष्यताम्' (कौओंसे दहीकी रक्षा करो) इस वाक्यका अभिप्राय केवल कौओंसे दहीकी रक्षा कराना ही नहीं है बल्कि उसके साथ कुत्ता, बिल्ली आदि अन्य जीवोंसे सुरक्षित रखना भी है। यहाँ 'तत्' और 'त्वम्' पदके वाच्यार्थोंमें विरोध है, फिर अन्य अर्थको सम्मिलित करनेसे भी वह विरोध तो दूर होगा ही नहीं; इसलिये अजहल्लक्षणासे भी इनकी एकता सिद्ध नहीं हो सकती। इन दोनोंके सिवा जहाँ कुछ अर्थ रक्खा जाता है और कुछ छोड़ा जाता है वह जहत्यजहती (भागत्याग) लक्षणा होती है। जैसे 'सोऽयम्' (यह वही है) इस वाक्यमें 'अयम्' पदसे कहे जानेवाले पदार्थकी अपरोक्षता और 'सः' पदके वाच्य

शरीरको विज्ञजन आत्माकी स्थूल उपाधि मानते हैं और मन, बुद्धि, दस इन्द्रियाँ तथा पाँच प्राण (इन सत्रह अङ्गोंसे) युक्त और अपञ्चीकृत भूतोंसे उत्पन्न हुए सूक्ष्म शरीरको, जो भोक्ताके सुख-दुःखादि अनुभवका साधन है, आत्माका दूसरा देह मानते हैं॥ २८-२९॥

अनाद्यनिर्वाच्यमपीह कारणं
मायाप्रधानं तु परं शरीरकम्।
उपाधिभेदात्तु यतः पृथक् स्थितं
स्वात्मानमात्मन्यवधारयेत्क्रमात् ॥३०॥

(इनके अतिरिक्त) अनादि और अनिर्वाच्य मायामय कारणशरीर ही जीवका तीसरा देह है।

पदार्थकी अपरोक्षताका त्याग करके इन दोनोंसे रहित जो निर्विशेष पदार्थ है उसकी एकता कही जाती है। इसी प्रकार महावाक्यके 'तत्' पदके वाच्य 'ईश्वर' के गुण सर्वज्ञता, परोक्षता आदिका और 'त्वम्' पदके वाच्य 'जीव' के गुण अल्पज्ञता, प्रत्यक्ता आदिका त्याग करके केवल चेतनांशमें एकता बतलायी जाती है।

इस प्रकार उपाधि-भेदसे सर्वथा पृथक् स्थित अपने आत्मस्वरूपको (क्रमशः उपाधियोंका बाध करते हुए) अपने हृदयमें निश्चय करे ॥ ३० ॥

उपाधिका बाध

कोशेष्वयं तेषु तु तत्तदाकृति-
र्विभाति सङ्गात्स्फटिकोपलो यथा ।
असङ्गरूपोऽयमजो यतोऽद्वयो
विज्ञायतेऽस्मिन्परितो विचारिते ॥ ३१ ॥

स्फटिकमणिके समान यह आत्मा भी (अन्नमयादि) भिन्न-भिन्न कोशोंमें उनके सङ्गसे उन्हींके आकारका भासने लगता है । किन्तु इसका भली प्रकार विचार करनेसे यह अद्वितीय होनेके कारण असङ्गरूप और अजन्मा निश्चित होता है ॥ ३१ ॥

बुद्धेस्त्रिधा वृत्तिरपीह दृश्यते
स्वप्नादिभेदेन गुणत्रयात्मनः ।
अन्योन्यतोऽस्मिन्व्यभिचारतो मृषा
नित्ये परे ब्रह्मणि केवले शिवे ॥ ३२॥

त्रिगुणात्मिका बुद्धिकी ही स्वप्न, जाग्रत् और सुषुप्ति-भेदसे तीन प्रकारकी वृत्तियाँ दिखायी देती हैं; किन्तु इन तीनों वृत्तियोंमेंसे प्रत्येकका एक दूसरीमें व्यभिचार होनेके कारण, ये (तीनों ही) एकमात्र कल्याणस्वरूप नित्य परब्रह्ममें मिथ्या हैं (अर्थात् उसमें इन वृत्तियोंका सर्वथा अभाव है) ॥ ३२ ॥

देहेन्द्रियप्राणमनश्चिदात्मनां
सङ्घादजस्रं परिवर्तते धियः ।
वृत्तिस्तमोमूलतयाज्ञलक्षणा
यावद्भवेत्तावदसौ भवोद्भवः ॥३३॥

बुद्धिकी वृत्ति ही देह, इन्द्रिय, प्राण, मन और चेतन आत्माके सङ्घातरूपसे निरन्तर परिवर्तित होती रहती है। यह वृत्ति तमोगुणसे उत्पन्न होनेवाली होनेके कारण अज्ञानरूपा है और जबतक यह रहती है तबतक ही संसारमें जन्म होता रहता है ॥ ३३ ॥

नेतिप्रमाणेन निराकृताखिलो
हृदा समास्वादितचिद्घनामृतः ।

त्यजेदशेषं जगदात्तसद्रसं
पीत्वा यथाम्भः प्रजहाति तत्फलम् ॥३४॥

'नेति-नेति' आदि श्रुति-प्रमाणसे निखिल संसारका बाध करके और हृदयमें चिद्घनामृतका आस्वादन करके सम्पूर्ण जगत्को, उसके साररूप सत् (ब्रह्म) को ग्रहण करके त्याग दे, जैसे नारियलके जलको पीकर मनुष्य उसे फेंक देते हैं ॥ ३४ ॥

कदाचिदात्मा न मृतो न जायते
न क्षीयते नापि विवर्धतेऽनवः ।
निरस्तसर्वातिशयः सुखात्मकः
स्वयम्प्रभः सर्वगतोऽयमद्वयः ॥३५॥

आत्मा न कभी मरता है, न जन्मता है; वह न कभी क्षीण होता है और न बढ़ता ही है। वह पुरातन, सम्पूर्ण विशेषणोंसे रहित, सुखस्वरूप, स्वयंप्रकाश, सर्वगत और अद्वितीय है ॥ ३५ ॥

अध्यास-निरूपण

एवंविधे ज्ञानमये सुखात्मके
कथं भवो दुःखमयः प्रतीयते ।

अज्ञानतोऽध्यासवशात्प्रकाशते
ज्ञाने विलीयेत विरोधतः क्षणात् ॥३६॥

जो इस प्रकार ज्ञानमय और सुखस्वरूप है उसमें (ज्ञान होनेके बाद) यह दुःखमय संसार कैसे प्रतीत हो सकता है ? यह तो अध्यासके कारण अज्ञानसे ही प्रतीत होता है, ज्ञानसे तो यह एक क्षणमें ही लीन हो जाता है; क्योंकि ज्ञान और अज्ञानका परस्पर विरोध है ॥ ३६ ॥

यदन्यदन्यत्र विभाव्यते भ्रमा-
दध्यासमित्याहुरमुं विपश्चितः ।
असर्पभूतेऽहिविभावनं यथा
रज्ज्वादिके तद्वदपीश्वरे जगत् ॥३७॥

भ्रमसे जो अन्यमें अन्यकी प्रतीति होती है उसीको विद्वानोंने अध्यास कहा है । जिस प्रकार असर्परूप रज्जुमें सर्पकी प्रतीति होती है उसी प्रकार ईश्वरमें संसारकी प्रतीति हो रही है ॥ ३७ ॥

विकल्पमायारहिते चिदात्मके-
ऽहंकार एष प्रथमः प्रकल्पितः ।

अध्यास एवात्मनि सर्वकारणे
निरामये ब्रह्मणि केवले परे ॥३८॥

जो विकल्प और मायासे रहित है उस सबके कारण निरामय, अद्वितीय और चित्स्वरूप परमात्मा ब्रह्ममें पहले इस 'अहङ्कार' रूप अध्यासकी ही कल्पना होती है ॥ ३८ ॥

इच्छादिरागादिसुखादिधर्मिकाः
सदा धियः संसृतिहेतवः परे ।
यस्मात्प्रसुप्तौ तदभावतः परः
सुखस्वरूपेण विभाव्यते हि नः ॥३९॥

सबके साक्षी आत्मामें इच्छा, अनिच्छा, राग-द्वेष और सुख-दुःखादिरूप बुद्धिकी वृत्तियाँ ही जन्म-मरणरूप संसारकी कारण हैं; क्योंकि सुषुप्तिमें इनका अभाव हो जानेपर हमें आत्माका—सुखरूपसे भान होता है ॥ ३९ ॥

अनाद्यविद्योद्भवबुद्धिबिम्बितो
जीवः प्रकाशोऽयमितीर्यते चितः ।
आत्मा धियः साक्षितया पृथक्स्थितो
बुद्ध्या परिच्छिन्नपरः स एव हि ॥४०॥

अनादि अविद्यासे उत्पन्न हुई बुद्धिमें प्रतिबिम्बित चेतनका प्रकाश ही 'जीव' कहलाता है। बुद्धिके साक्षीरूपसे आत्मा उससे पृथक् है, वह परात्मा तो बुद्धिके परिच्छेदसे रहित है ॥ ४० ॥

चिद्बिम्बसाक्ष्यात्मधियां प्रसङ्गत-
स्त्वेकत्र वासादनलाक्तलोहवत् ।
अन्योन्यमध्यासवशात्प्रतीयते
जडाजडत्वं च चिदात्मचेतसोः ॥४१॥

अग्निसे तपे हुए लोहेके समान चिदाभास, साक्षी आत्मा तथा बुद्धिके एकत्र रहनेसे परस्पर अन्योन्याध्यास होनेके कारण क्रमशः उनकी चेतनता और जडता प्रतीत होती है। (अर्थात् जिस प्रकार अग्निसे तपे हुए लोहपिण्डमें अग्नि और लोहेका तादात्म्य हो जानेसे लोहेका आकार अग्निमें और अग्निकी उष्णता लोहेमें दिखायी देने लगती है उसी प्रकार बुद्धि और आत्माका तादात्म्य हो जानेसे आत्माकी चेतनता बुद्धि आदिमें और बुद्धि आदिकी जडता आत्मामें प्रतीत होने लगती है। इसलिये अध्यासवश बुद्धिसे लेकर शरीरपर्यन्त

अनात्म-वस्तुओंको ही आत्मा मानने लगते हैं) ॥ ४१ ॥

गुरोः सकाशादपि वेदवाक्यतः
सञ्जातविद्यानुभवो निरीक्ष्य तम् ।
स्वात्मानमात्मस्थमुपाधिवर्जितं
त्यजेदशेषं जडमात्मगोचरम् ॥ ४२ ॥

गुरुके समीप रहनेसे और वेदवाक्योंसे आत्मज्ञानका अनुभव होनेपर अपने हृदयस्थ उपाधिरहित आत्माका साक्षात्कार करके आत्मारूपसे प्रतीत होनेवाले देहादि सम्पूर्ण जडपदार्थोंका त्याग कर देना चाहिये ॥ ४२ ॥

आत्म-चिन्तन

प्रकाशरूपोऽहमजोऽहमद्वयो-
ऽसकृद्विभातोऽहमतीव निर्मलः ।
विशुद्धविज्ञानघनो निरामयः
सम्पूर्ण आनन्दमयोऽहमक्रियः ॥ ४३ ॥

मैं प्रकाशस्वरूप, अजन्मा, अद्वितीय, निरन्तर भासमान, अत्यन्त निर्मल, विशुद्ध विज्ञानघन, निरामय, क्रियारहित और एकमात्र आनन्दस्वरूप हूँ ॥ ४३ ॥

सदैव मुक्तोऽहमचिन्त्यशक्तिमा-
नतीन्द्रियज्ञानमविक्रियात्मकः ।
अनन्तपारोऽहमहर्निशं बुधै-
र्विभावितोऽहं हृदि वेदवादिभिः ॥४४॥

मैं सदा ही मुक्त, अचिन्त्यशक्ति, अतीन्द्रिय, अविकृतरूप और अनन्तपार हूँ। वेदवादी पण्डितजन अहर्निश मेरा हृदयमें चिन्तन करते हैं ॥ ४४ ॥

एवं सदात्मानमखण्डितात्मना
विचारमाणस्य विशुद्धभावना ।
हन्याद‌विद्यामचिरेण कारकै
रसायनं यद्वदुपासितं रुजः ॥४५॥

इस प्रकार सदा आत्माका अखण्ड-वृत्तिसे चिन्तन करनेवाले पुरुषके अन्तःकरणमें उत्पन्न हुई विशुद्ध भावना तुरंत ही कारकादिके सहित अविद्याका नाश कर देती है, जिस प्रकार नियमानुसार सेवन की हुई ओषधि रोगको नष्ट कर डालती है ॥ ४५ ॥

विविक्त आसीन उपारतेन्द्रियो
विनिर्जितात्मा विमलान्तराशयः ।

विभावयेदेकमनन्यसाधनो
विज्ञानदृक्केवल आत्मसंस्थितः ॥४६॥

(आत्म-चिन्तन करनेवाले पुरुषको चाहिये कि) एकान्त देशमें इन्द्रियोंको उनके विषयसे हटाकर और अन्तःकरणको अपने अधीन करके बैठे तथा आत्मामें स्थित होकर और किसी साधनको आश्रय न लेकर शुद्धचित्त हुआ केवल ज्ञानदृष्टिद्वारा एक आत्माकी ही भावना करे ॥ ४६ ॥

विश्वं यदेतत्परमात्मदर्शनं
विलापयेदात्मनि सर्वकारणे ।
पूर्णश्चिदानन्दमयोऽवतिष्ठते
न वेद बाह्यं न च किञ्चिदान्तरम् ॥४७॥

यह विश्व परमात्मस्वरूप है ऐसा समझकर इसे सबके कारणरूप आत्मामें लीन करे; इस प्रकार जो पूर्ण चिदानन्दस्वरूपसे स्थित हो जाता है उसे बाह्य अथवा आन्तरिक किसी भी वस्तुका ज्ञान नहीं रहता ॥४७॥

ओंकारोपासना

पूर्वं समाधेरखिलं विचिन्तये-
दोङ्कारमात्रं सचराचरं जगत् ।
तदेव वाच्यं प्रणवो हि वाचको
विभाव्यतेऽज्ञानवशान्न बोधतः ॥४८॥

समाधि प्राप्त होनेके पूर्व ऐसा चिन्तन करे कि सम्पूर्ण चराचर जगत् केवल ओंकारमात्र है । यह संसार वाच्य है और ओंकार इसका वाचक है । अज्ञानके कारण ही संसारकी प्रतीति होती है, ज्ञान होनेपर इसका कुछ भी नहीं रहता ॥ ४८ ॥

अकारसंज्ञः पुरुषो हि विश्वको
ह्युकारकस्तैजस ईर्यते क्रमात् ।
प्राज्ञो मकारः परिपठ्यतेऽखिलैः
समाधिपूर्वं न तु तत्त्वतो भवेत् ॥४९॥

(ओंकारमें अ, उ और म—ये तीन वर्ण हैं; इनमेंसे) अकार विश्व (जागृतिके अभिमानी) का वाचक है, उकार तैजस (स्वप्नका अभिमानी) कहलाता है और

मकार प्राज्ञ (सुषुप्तिके अभिमानी) को कहते हैं; यह व्यवस्था समाधि-लाभसे पहलेकी है, तत्त्वदृष्टिसे ऐसा कोई भेद नहीं है ॥ ४९ ॥

विश्वं त्वकारं पुरुषं विलापये-
दुकारमध्ये बहुधा व्यवस्थितम् ।
ततो मकारे प्रविलाप्य तैजसं
द्वितीयवर्णं प्रणवस्य चान्तिमे ॥५०॥

नाना प्रकारसे स्थित अकाररूप विश्व पुरुषको उकारमें लीन करे और ओंकारके द्वितीय वर्ण तैजसरूप उकारको उसके अन्तिम वर्ण मकारमें लीन करे ॥५०॥

मकारमप्यात्मनि चिद्घने परे
विलापयेत्प्राज्ञमपीह कारणम् ।
सोऽहं परं ब्रह्म सदा विमुक्तिम-
द्विज्ञानदृङ् मुक्त उपाधितोऽमलः ॥५१॥

फिर कारणात्मा प्राज्ञरूप मकारको भी चिद्घन-रूप परमात्मामें लीन करे, (और ऐसी भावना करे कि) वह नित्यमुक्त विज्ञानस्वरूप उपाधिहीन निर्मल परब्रह्म मैं ही हूँ ॥ ५१ ॥

एवं सदा जातपरात्मभावनः
स्वानन्दतुष्टः परिविस्मृताखिलः ।
आस्ते स नित्यात्मसुखप्रकाशकः
साक्षाद्विमुक्तोऽचलवारिसिन्धुवत् ॥५२॥

इस प्रकार निरन्तर परमात्मभावना करते-करते जो आत्मानन्दमें मग्न हो गया है तथा जिसे सम्पूर्ण दृश्य-प्रपञ्च विस्मृत हो गया है वह नित्य आत्मानन्दका अनुभव करनेवाला जीवन्मुक्त योगी निस्तरङ्ग समुद्रके समान साक्षात् मुक्तस्वरूप हो जाता है ॥ ५२ ॥

एवं सदाभ्यस्तसमाधियोगिनो
निवृत्तसर्वेन्द्रियगोचरस्य हि ।
विनिर्जिताशेषरिपोरहं सदा
दृश्यो भवेयं जितषड्गुणात्मनः ॥५३॥

इस प्रकार जो निरन्तर समाधियोगका अभ्यास करता है, जिसके सम्पूर्ण इन्द्रियगोचर विषय निवृत्त हो गये हैं तथा जिसने काम-क्रोधादि सम्पूर्ण शत्रुओं-को परास्त कर दिया है, उस छहों इन्द्रियों (मन और

पाँच ज्ञानेन्द्रियों) को जीतनेवाले महात्माको मेरा निरन्तर साक्षात्कार होता है ॥ ५३ ॥

ध्यात्वैवमात्मानमहर्निशं मुनि-
स्तिष्ठेत्सदा मुक्तसमस्तबन्धनः ।
प्रारब्धमश्नन्नभिमानवर्जितो
मय्येव साक्षात्प्रविलीयते ततः ॥५४॥

इस प्रकार अहर्निश आत्माका ही चिन्तन करता हुआ मुनि सर्वदा समस्त बन्धनोंसे मुक्त होकर रहे तथा (कर्ता,भोक्तापनके) अभिमानको छोड़कर प्रारब्धफल भोगता रहे । इससे वह अन्तमें साक्षात् मुझहीमें लीन हो जाता है ॥ ५४ ॥

आत्म-चिन्तनकी आवश्यकता

आदौ च मध्ये च तथैव चान्ततो
भवं विदित्वा भयशोककारणम् ।
हित्वा समस्तं विधिवादचोदितं
भजेत्स्वमात्मानमथाखिलात्मनाम् ॥५५॥

संसारको आदि, अन्त और मध्यमें सब प्रकार

भय और शोकका ही कारण जानकर समस्त वेद-विहित कर्मोंको त्याग दे तथा सम्पूर्ण प्राणियोंके अन्तरात्मस्वरूप अपने आत्माका भजन करे ॥ ५५ ॥

> आत्मन्यभेदेन विभावयन्निदं
> भवत्यभेदेन मयात्मना तदा ।
> यथा जलं वारिनिधौ यथा पयः
> क्षीरे वियद्व्योम्न्यनिले यथानिलः ॥५६॥

जिस प्रकार समुद्रमें जल, दूधमें दूध, महाकाशमें घटाकाशादि और वायुमें वायु मिलकर एक हो जाते हैं उसी प्रकार इस सम्पूर्ण प्रपञ्चको अपने आत्माके साथ अभिन्नरूपसे चिन्तन करनेसे जीव मुझ परमात्माके साथ अभिन्नभावसे स्थित हो जाता है ॥ ५६ ॥

> इत्थं यदीक्षेत हि लोकसंस्थितो
> जगन्मृषैवेति विभावयन्मुनिः ।
> निराकृतत्वाच्छ्रुतियुक्तिमानतो
> यथेन्दुभेदो दिशि दिग्भ्रमादयः ॥५७॥

यह जो जगत् है वह श्रुति, युक्ति और प्रमाणसे बाधित होनेके कारण चन्द्रभेद और दिशाओंमें होने-

वाले दिग्भ्रमके समान मिथ्या ही है—ऐसी भावना करता हुआ लोक (व्यवहार)में स्थित मुनि इसे देखे ॥५७॥

यावन्न पश्येदखिलं मदात्मकं
तावन्मदाराधनतत्परो भवेत् ।
श्रद्धालुरत्यूर्जितभक्तिलक्षणो
यस्तस्य दृश्योऽहमहर्निशं हृदि ॥५८॥

जबतक सारा संसार मेरा ही रूप दिखलायी न दे तबतक निरन्तर मेरी आराधना करता रहे। जो श्रद्धालु और उत्कट भक्त होता है उसे अपने हृदयमें मेरा रात-दिन साक्षात्कार होता है ॥ ५८ ॥

उपदेशका उपसंहार

रहस्यमेतच्छ्रुतिसारसङ्ग्रहं
मया विनिश्चित्य तवोदितं प्रिय ।
यस्त्वेतदालोचयतीह बुद्धिमान्
स मुच्यते पातकराशिभिः क्षणात् ॥५९॥

हे प्रिय ! सम्पूर्ण श्रुतियोंके साररूप इस गुप्त रहस्यको मैंने निश्चय करके तुमसे कहा है । जो

बुद्धिमान् इसका मनन करेगा वह तत्काल समस्त पापोंसे मुक्त हो जायगा ॥ ५९ ॥

आतर्यदीदं परिदृश्यते जग-
न्मायैव सर्वं परिहृत्य चेतसा ।
मद्भावनाभावितशुद्धमानसः
सुखी भवानन्दमयो निरामयः ॥६०॥

भाई ! यह जो कुछ जगत् दिखायी देता है वह सब माया है । इसे अपने चित्तसे निकालकर मेरी भावनासे शुद्धचित्त और सुखी होकर आनन्दपूर्ण और क्लेशशून्य हो जाओ ॥ ६० ॥

यः सेवते मामगुणं गुणात्परं
हृदा कदा वा यदि वा गुणात्मकम् ।
सोऽहं स्वपादाञ्चितरेणुभिः स्पृशन्
पुनाति लोकत्रितयं यथा रविः ॥६१॥

जो पुरुष अपने चित्तसे मुझ गुणातीत निर्गुणका अथवा कभी-कभी मेरे सगुण स्वरूपका भी सेवन करता है वह मेरा ही रूप है । वह अपनी चरण-रजके स्पर्शसे सूर्यके समान सम्पूर्ण त्रिलोकीको पवित्र कर देता है ॥६१॥

विज्ञानमेतदखिलं श्रुतिसारमेकं
वेदान्तवेद्यचरणेन मयैव गीतम् ।
यः श्रद्धया परिपठेद् गुरुभक्तियुक्तो
मद्रूपमेति यदि मद्वचनेषु भक्तिः ॥६२॥

यह अद्वितीय ज्ञान समस्त श्रुतियोंका एकमात्र सार है। इसे वेदान्तवेद्य भगवत्पाद मैंने ही कहा है। जो गुरुभक्तिसम्पन्न पुरुष इसका श्रद्धापूर्वक पाठ करेगा उसकी यदि मेरे वचनोंमें प्रीति होगी तो वह मेरा ही रूप हो जायगा ॥ ६२ ॥

इति श्रीमदध्यात्मरामायणोत्तरकाण्डान्तर्गता

श्रीरामगीता सम्पूर्णा ।

प्राणवायु

प्राण — हृदयमें बहिर्गमनशील है

अपान — गुदामें अधोगमनशील है

समान — नाभिमें - भुक्त अन्नादिके सम्यक् पाकशील भोजनको परिपाक बनाता है।

उदान — कंठ में - ऊर्ध्वगमनशील है

व्यान — सारे शरीर में व्याप्त है यह समानवायु द्वारा समीकृत अन्नादि रसको - सब शरीर में वितरण करता है।

उपवायु

नाग — उद्गार करने डकार लेने में सहायक है

कूर्म — उन्मीलन यानी आंखके पलक खोलने में सहायक

कृकर — थूकने में छींकने में

देवदत्त — जमाई लेने में

धनञ्जय — देहके पोषण करने में शरीरमें भी रहता है

स्थूल-शरीर

पंचीकृत - तथा २४ तत्त्वों से बना।
५ महाभूत - पृथ्वी आकाश तेज वायु जल।
५ प्राण - प्राण अपान समान उदान व्यान,
५ ज्ञानेन्द्री - श्रोत्र त्वक चक्षु रसना, घ्राण।
५ कर्मेन्द्री वाक पाणि पाद पायु उपस्थ,
४ अन्तःकरण - मन बुद्धि चित्त अहंकार

२४ ऐसे ये २४ तत्त्वों का स्थूलशरीर।

सूक्ष्मशरीर - अपंचीकृत -

५ ज्ञानेन्द्री
५ कर्मेन्द्री
५ प्राण
२ अन्तःकरण - मन, बुद्धि

१७ ऐसे १७ तत्त्वों से सूक्ष्मशरीर बना

ॐ

नित्यं शुद्धं निराभासं निराकारं
निरञ्जनम् । नित्यबोधं चिदानन्दं
गुरुब्रह्म नमाम्यहम् ॥

ओंकार प्रभवा देवा ओंकार प्रभवाः
स्वराः । ओंकार प्रभवं सर्वं
त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥

ह्रस्वो दहति पापानि दीर्घः —
संपत्प्रदोऽव्ययः । अर्धमात्रा समायुक्तः
प्रणवो — मोक्षदायकः ॥

प्रणवं ह्यपरं ब्रह्म प्रणवश्च परः स्मृतः
न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः

अर्थ- ओंकार से परे कोई वस्तु नहीं है। रात
दिन प्रणव का जप ही निरूपण किया है
जो ओंकार स्वरूप अपने को जान गया है
उसकी दृष्टि में न कोई उत्पन्न होता है न
मरता है न कोई बद्ध है. न कोई मुक्त है न
गुरु है न शिष्य है. आप ही आप है

ओम्- उच्चारण करते हुए [illegible] विधु-
[illegible]

तावद् गर्जन्ति शास्त्राणि
जम्बुका विपिने यथा।
न गर्जति महाशक्तिः
यावद् वेदान्त केशरी॥

। कर्म शास्त्रे कुतो ज्ञानं, तर्के नैवास्ति निश्चयः।
सांख्य योगौ भिदापन्नौ, शाब्दिकाः शब्द तत्पराः।
अन्ये पाखण्डिनः सर्वे ज्ञानवार्तासु दुर्बलाः।
एकं वेदान्त-विज्ञानं स्वानुभूत्या विराजते।।

अर्थ कर्मशास्त्र (जैमिनी प्रणीत पूर्व मीमांसा
आदि शास्त्र) में ज्ञान कहां? तर्क शास्त्र
(कणाद् गौतम प्रणीत न्याय वैशेषिकादि
शास्त्र) में निश्चय नहीं है (
सांख्य योग (कपिल प्रणीत सांख्य
पातञ्जलि प्रणीत योग) शास्त्र
भेदवादी हैं। शाब्दिक (वैयाकरण) केवल
शब्दसाधना में ही तत्पर हैं। इसके मत
वादी लोग सभी पाखंडी हैं और वे यथार्थ
ज्ञान की वार्ता में दुर्बल (प्रमादी) हैं।
एक मात्र वेदान्त ही [illegible]

(वेदान्त का अधिकारी
(१) ज्ञान का अधिकारी)

जपतप किये से पाप जिसके,
सर्व हैं क्षय होगये।
कामादि से जो मुक्त हैं, दंभादि जिसके खोगये।
निश्चय जिसे है होगया, संसार यह निस्सार है
शम-दम-दया से युक्त उसका ज्ञान में अधिकार है
शम - सदैव वासनाओं का त्याग करना शम कहलाता है
दम - बाह्य वृत्तियों (के) रोकना दम कहलाता है

मा भोग जिसको खेंचते, ना क्षोभ मन में आय है
कैसी सुहावनी वस्तु हो न मन लोभ उपजाय है
है वस्तु सच्ची कौनसी, किस वस्तु ही सार है
उस वस्तु की ही खोज, उसका ज्ञान में अधिकार है

(३)

सब भोगने की सामग्री है, अरु प्राप्त सब ही भोग हैं
फिर भी न रुचते भोग हैं, मालूम होते रोग हैं
ब्रह्मादिका ऐश्वर्य भी जिसके लिये स्वप्न भाव है
जो चाहता केवल मोक्ष उसका ज्ञान में अधिकार है

(४)

मन खिन्न रहता है सदा, रुचता जिसे न भोग है
न अङ्गहीन तड़पता, शिवसे हुआ न योग है।
मन शान्त होनेका किया करता सदा व्यापार है।
फिरभी न मन हो शान्त, उसका ज्ञान में अधिकार है॥

(५)

रुचता न भोजन है जिसे, मन मार फिरभी खाय है
चलना नहीं है चाहता, हो खिन्न फिरभी जाय है।
धन, धाम सुत न चाहता, रुचता नहीं परिवार है
सत्तत्त्व की है खोज, उसका ज्ञान में अधिकार है॥

(६)

संसार ही दिखे दुःखमय, सुखका नहीं पाता पता।
सुख है कहां इस सोच में निद्रा हुई है लापता॥
मल्लाह बिनु ज्यों नाव चक्कर खा रही मझधार है
त्यों बुद्धि है व्याकुल होय, उसका ज्ञान में अधिकार है॥

(७)

हैं वेद चारों पढ़ लिये, वेदाङ्ग भी हैं पढ़ लिये।
सब शास्त्र पढ़कर अर्थ उनके चित्त में है धर लिये।
अब तक कहीं भी बुद्धि ने पाया नहीं आधार है।
जाना नहीं है वेद्य, उसका ज्ञान में अधिकार है॥

जाना सगुण है ब्रह्म, पर निर्गुण अभी जाना नहीं,
'यह दृश्य कैसे दीखता, यह भेद पहिचाना नहीं।
की अर्थ की है भावना, बहु दिन जपा ओंकार है,
ओत्म। हुआ मन शुद्ध उसका ज्ञान में अधिकार
है
है।।

ब्रह्म ज्ञान का अधिकारी. वही हो सकता है
जिसके राग द्वेष इच्छा. काम क्रोध
इत्यादि इनसे बचा हो. या इनपर विचार
कर इनको कम करने का विचार करता
हो। साथही साथ. भगवान शंकर या
राम - कृष्ण इनकी भक्ति में अपना मन
हमेशा लगाता हो. और सदा, सत्संग में
अपना जीवन बिताता हो। इसके साधन
चतुष्टय का अभ्यास किया हो।
यह साधन चतुष्टय का विषय आगे पन्ने
पर लिखा है।

(साधन-चतुष्टय)

साधनचतुष्टयसम्पन्नाधिकारिणो वक्ष्यामि
मोक्षसाधनभूतं तत्त्वविवेक प्रकारं वक्ष्यामः
(मोक्ष के चार साधन हैं- जो इन साधनों से युक्त हैं वेही मोक्ष के अधिकारी हैं।

तत्त्वबोध - अर्थात् (आकाश वायु अग्नि जल पृथ्वी इन पांचों तत्त्व का ज्ञान होना)
याने इन पांच महाभूतों का ज्ञान होगा।

साधन-चतुष्टयं किम् । चार साधन कौन2 हैं
(1) नित्यानित्यवस्तु विवेकः। (2) इहामुत्रार्थ फल भोग विरागः (3) शमादि षट् सम्पत्तिः -
(4) मुमुक्षुत्वं चेति।।

प्रश्न: नित्याऽनित्य वस्तु विवेकः कः?
उ- नित्य अनित्य क्या है
नित्यवस्त्वेकं ब्रह्म तद्व्यतिरिक्तं सर्वम् अनित्यम्। अयमेव नित्यानित्यवस्तुविवेकः।
संसार में ब्रह्म ही सत्य है व बाकी सब अनित्य है। यही नित्यानित्य वस्तु विवेक

विराग: कः ? विराग क्या वस्तु है
उत्तर- इह स्वर्ग भोगेषु इच्छाराहित्यम्। ३।
संसार के पदार्थों की इच्छा स्वर्ग के भोगों की
इच्छा सबको त्यागना - विराग है।
ब्रह्मादि स्थावरान्तेषु वैराग्यं विषयेष्वनु।
यथैव काक विष्ठायां वैराग्यं तद्धि निर्मलम्॥
प्रश्न- शमादि साधन सम्पत्तिः का? क्या है ?
उत्तर-- शमदमोपरति तितिक्षा श्रद्धा समाधान
चेति।
अर्थ शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा
और समाधान ये छः शमादि साधन सम्पत्ति
कहलाते हैं।
शम: ? कः १ उत्तर मनो निग्रहः मन का निग्रह
मन को विषय वासनाओं से हटाकर एकाग्र करना-
इसका नाम शम है।
दम: कः ? दम किसे कहते हैं:
उत्तर- चक्षुरादि बाह्येन्द्रिय निग्रहः।
अर्थात्- नेत्र आदि जो बाह्य ज्ञानेन्द्रियां
उनका निग्रह (वशमें) करना दम कहलाता
है।

सदैव वासनात्यागः शमोऽयमिति शब्दितः
निग्रहो बाह्य वृत्तीनां, दम इत्यभिधीयते।
वासनोंका सदैव त्याग करना शम है.
और बाह्य वृत्तियों को रोकना दम कहा है।
(उपरति - स्वधर्मानुष्ठानमेव.)
स्व कहिये धर्मशास्त्र उसमें स्वधर्म कहा है
उसका पालन करना और संसार के विषयों से
उदासीन होना उपरति है।
(तितिक्षा - शीतोष्ण सुख दुःखादि -
सहिष्णुत्वम्॥
सरदी गरमी सुख दुख तथा आदि शब्द से:
मान अपमान, लाभ अलाभ, जय पराजय.
इन सबको समान समझना. इन्हें बिना
रोक टोक सहन करना तितिक्षा है।
विषयेभ्यः परावृत्तिः परमोपरतिर्हि सा
सहनं सर्व दुःखानां तितिक्षा सा
शुभा मता॥ (५)

विषयोंसे परावृत्त मनको स्थिर करना ही परम उपरति है (उपरति है।)
सम्पूर्ण दुःखोंको बिना प्रतिकार के सहन करने को तितिक्षा मानी गई है।
श्रद्धा — चित्तैकाग्रता क्या? श्रद्धा क्या? / गुरुवेदान्तवाक्ये विश्वासः श्रद्धा।
अर्थ- गुरु वेदान्त वाक्य में विश्वास करना शास्त्र- आचार्यों के वाक्य में श्रद्धा रखना ही श्रद्धा है।
समाधान — चित्तैकाग्रता, चित्त की एकाग्रता मन को एकाग्र करके विचार करना जिससे मन शान्त हो इसी को समाधान कहते हैं
निगमाचार्य वाक्येषु भक्तिः श्रद्धेति विश्रुता (श्रद्धा)
चित्तैकाग्र्यं तु सल्लक्ष्ये समाधानमिति स्मृतम्।।
शास्त्र और आचार्य के वाक्यों में भक्ति रखना श्रद्धा है।
अपने वास्तविक लक्ष्य में चित्त की एकाग्रता है समाधान कहलाता है

प्रश्न-मुमुक्षुत्वं किम् ? मोक्षु क्या है।
उत्तर मोक्षा मे भृयादि तीच्छा (मोक्ष की इच्छा)
संसार के दुःखों से निवृत्ति होकर
ब्रह्मानंद की प्राप्ति होकर जन्म मरणादि
संसार उससे मेरी मुक्ति होजाय इसी
इच्छा का नाम मुमुक्षुत्वं है। यानी
मेरी मोक्ष हो।
।संसारबन्धनिर्मुक्तिः कथं मे स्यात् कदा
विभो। इतियां सुदृढा बुद्धिर्वक्तव्या
सा मुमुक्षुता।
अर्थ- प्रभो! मेरी संसार बन्धन्यो से कब
और किस प्रकार मुक्ति होगी
ऐसी जो दृढ बुद्धि है उसी को
मुमुक्षुता कहना चाहिये।

स्ववर्णा

साधन-चतुष्टय

स्ववर्णाश्रमधर्मेण तपसा हरितोषणात्।
साधनं प्रभवेत्पुंसां वैराग्यादि चतुष्टयम्॥

(अपने वर्णाश्रम धर्म और तपस्या द्वारा श्रीहरि को प्रसन्न करने से मनुष्यों को वैराग्यादि साधन-चतुष्टय की प्राप्ति होती है।

(साधन-चतुष्टय)

(१) नित्यानित्य वस्तु का विवेक
(२) इहामुत्रार्थ फल भोग विराग
अर्थात्–संसार के पदार्थों से वैराग्य
(३) शमादि षट्सम्पत्तिः। शम, दम, उपरति
तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान।
(४) मुमुक्षुत्व–यानि मोक्ष की इच्छा

ये चार साधन चतुष्टय हैं
इनके साधन के बाद वेदान्त ज्ञान विषय
का अधिकारी होता है।

ज्ञान के अधिकारी निर्णय साधन चतुष्टय के साथ २ भक्ति का स्वरूप भी समझना चाहिये।

भक्ति — वैराग्य और ज्ञान की जननी है।

बिना वैराग्य के ज्ञान नहीं और बिना भक्ति के ज्ञान वैराग्य नहीं।

भक्ति क्या है?

वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः।
जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं च यद् अहैतुकम्॥

भगवान वासुदेव में भक्तियोग के प्रयोग होने पर शीघ्र ही वैराग्य का उदय होता है।

भक्ति क्या है? भगवान की ओर प्राण का तीव्र आकर्षण ही भक्ति है।

बिना वैराग्य के ज्ञान का अधिकारी होना निष्फल है। जैसे ...

बादि बसन बिनु भूषण भारू।
बादि बिरति बिनु ब्रह्म बिचारू॥
जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई।
कोटि भांति कोउ करै उपाई॥
तथा मोक्ष सुख सुनु खगराई।
रहिन सकै हरि भगति बिहाई॥

जे असि भगति जानि परिहरहीं
केवल ज्ञान हेतु श्रम करहीं॥
ते जड़ कामधेनु गृह त्यागी।
खोजत आकु फिरहिं पय लागी॥
सुनु खगेश हरि भगति बिहाई।
जो सुख चाहहिं आन उपाई॥
ते सठ महासिन्धु बिनु तरनी।
पैरि पार चाहहिं जड़ करनी॥

श्री भगवान के भक्ति के प्रताप से
के वैराग्य की उत्पत्ति होती है—
और जिससे अन्तः करण शुद्ध हो।
ज्ञान का अधिकारी होता है।

। ज्ञान के अधिकारी होने में अन्तः
करण शुद्ध की आवश्यकता है।
यह अन्तः करण शुद्ध - इन उपायों से
होता है।

दया से - अन्तः करण शुद्ध होता है
सेवा से " " "
भक्ति से " " "
परोपकार " " "
सत्यभाषण " " "
निष्कपटता से " " "

काम न क्रोध न लोभ न माया।
जिनके हृदय ... [illegible]

ज्ञान के अधिकारी के लिये
ये ये मंत्रों में लिखागया है वह सब
महात्माओं के अनुभव की हुई
बातों को ही लिखागया है —
जब तक भक्ति व वैराग्य नहो
तब तक ज्ञान का अधिकारी
नहीं। भक्ति के प्रताप से उसे
स्वतः ही ज्ञान होगा। जैसे
भक्ति क्या है — भक्त कहता है चाहे छोड़ दें
यह सब छोड़ दें कहते कहते भगवान प्रसन्न
होने पर भगवान कृष्ण प्रसन्न होकर
हम छोड़ दें। मैं से। हम का चाहे लोग
भी। छोड़ दें कोई हम जानते
छोड़ दें। जो कुछ सो मैं हूं।
भक्ति बड़ी कमाई है कि भगवान
अपने भक्तों पर कृपा करके ज्ञान का
अधिकारी बना देते हैं। [illegible]

गुरु

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं ।
प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्
मायानुकूलेन नभस्वतेरितं
पुमान् भवाब्धिं न तरेत्स आत्म हा॥

अर्थ - जो परम दुर्लभ नरदेह रूपी दृढ नौका को पाकर - तथा गुरु रूपी कर्णधार और ईश्वर कृपा रूपी अनुकूल वायु पाकर भी जो प्राणी इस भवसागर से पार नहीं हो वह आत्म हत्या का भागी होता है ।

अब २४ तत्त्वों का वर्णन करेंगे ।

अथ - चतुर्विंशति तत्त्वोत्पत्ति प्रकारं वक्ष्यामः । २४ तत्त्वों का हाल -

ब्रह्मणाश्रया सत्त्व रजस्तमो गुणात्मिका माया अस्ति, ततः आकाशः सम्भूतः आकाशाद्वायुः वायोस्तेजः तेजस आपः अद्भ्यः पृथिवीम् ।

अर्थ- ब्रह्म ने सत्तोगुण, रजोगुण, तमोगुण इन तीनों को साम्य रूप में मिलाकर माया को निर्माण किया, पश्चात् आकाश निर्माण किया, आकाश तत्त्व से वायु को, और वायु तत्त्व से अग्नि को, तथा अग्नि तत्त्व से जल को, और जल तत्त्व से पृथ्वी को निर्माण किया परन्तु इन सबको अपने आधीन रक्खा।

/ सांख्यमतवाले पुरुष इस (माया) को स्वप्रकृति और अव्याकृत तथा प्रधान भी कहते हैं ॥ यद्यपि सांख्य जो ईश्वर को अकर्ता कहते हैं पर यह मायाधित, अज्ञान अवस्था का द्योतक है

/ ब्रह्म की इच्छा. एकोऽहं बहुस्याम। एक से बहुत होजाऊं इस प्रकार ब्रह्म का सत्य – संकल्प होने से तिसके आश्रय जो प्रकृति थी सो क्षोभ को प्राप्त हुई। तिस से तीनों गुण अपनी साम्य अवस्था का परित्याग करके न्यूनाधिक भाव को प्राप्त हुआ। आगे प्रकरण को

। जिस भाग में सतोगुण की अधिकता तथा रजोगुण की अत्यंत न्यूनता हुई उसका नाम माया होता भया।
। जिस भाग में रजोगुण की अधिकता और सत्वगुण तमोगुण की न्यूनता हुई उसका नाम - अविद्या हुआ।
। जिस भाग में तमोगुण की अधिकता। सत्व रजो की अत्यंत न्यूनता तिसका नाम. तमः प्रधान. प्रकृति हुई॥
इस कारण गुणों के न्यूनाधिक भाव से प्रकृति के तीन भेद होते भये।
। तिसमें प्रथम माया थी तिससे सत्वगुण की अधिकता के कारण से अत्यंत स्वच्छ ता। होने से तिस परिपूर्ण चेतन स्वरूप ब्रह्म का प्रतिबिम्ब होता भया। पश्चात जो प्रतिबिम्ब सो रमायावच्छिन्न। बिम्बभूत ब्रह्म से तीनों करके सर्व शक्तिमान नित्य शुद्ध बुद्ध ज्ञानस्वरूप ईश्वर होता भया -

। है सेही प्रकृतिका दूसरा भाग जो अविद्या थी. जिसमे प्रतिबिम्ब और अविद्या आवी... यह तीनों मिलके के आत्मा अभिमाने बह और मालेन जीव हुआ

। और जो तमः प्रधान प्रकृतिको तीसरा भाग था तिसमें तमोगुणको अधिकता के कारण आत्मा मलीनताहोने से बिम्ब प्रतिबिम्ब नहीं था जो परमात्मा ईश्वरको इच्छानुसार तिस तम प्रधान प्रकृतिसे आकाशादि पांच भूतोंकी उत्पत्तिहुई।।

पांच-महाभूत.

आकाश, वायु तेज जल पृथ्वी.

इन पांच महाभूतोसे सब जगतकी उत्पत्तिहुई।। - इसका हाल आगे पृष्ठपर लिखा जाताहै -

- पृष्ठपर -

सात्विक अंश से पांच पांच ज्ञानइन्द्री और चार अन्तः करण. ये ९ पदार्थ उत्पन्नहुए।।

पंचज्ञान इन्द्री — सात्विक अंशसे पंचज्ञान इन्द्रिये हुई॥

अर्थात इन पाँचो तत्त्वोंके मध्यसे प्रथम

/ आकाश तत्त्व के सात्विक अंश से कर्ण इन्द्रिय उत्पन्न ई. श्रवण इन्द्री

/ वायु तत्त्वके सात्विक अंशसे त्वचा (चमड़ा) इन्द्रीय उत्पन्न हुई। त्वचा

/ अग्निके सात्विक अंशसे चक्षु इन्द्री उत्पन्न हुई

/ जलके सात्विक अंशसे रसना याने जीभ। इन्द्री उत्पन्न हुई

/ पृथ्वीके सात्विक अंशसे घ्राण इन्द्री याने नाक इन्द्री उत्पन्न हुई॥

आकाशादि इनके सात्विक अंशसे पांच ज्ञान इन्द्रिय उत्पन्न हुई

श्रवण, त्वचा चक्षु रसना, घ्राण

आकाश. वायु. अग्नि. जल. पृथ्वी

इन पांचो तत्वों के सात्विक अंशो से
पांचो तत्वों को इकट्ठा किया-
इन पांचों सात्विक तत्वों के अंशो से
मन बुद्धि अहंकार चित्त और
अन्तःकरण की उत्पत्ति हुई।
इन चारों के कार्य क्या हैं देवता-
। मन का कार्य संकल्प विकल्प करना।
। बुद्धि का कार्य - यह काम योग्य है करना
या न करना निश्चय करना बुद्धि का कार्य है
। अहंकार — यह काम मैंने किया इस तरह
का विचार - अहंकार है।
। चित्त - प्रत्येक वस्तु को स्मरण रखना
याद रखना चित्त का कार्य है।
मन का - देवता चन्द्रमा है।
बुद्धि का देवता - ब्रह्मा है। (ज्ञान... अन्तः...)
अहंकार का देवता - रुद्र (महादेव) है
चित्त का देवता - वासुदेव (विष्णु) है।
पांच ज्ञान इन्द्री ४ अन्तःकरण ...

सात्विक अंश से ५ ज्ञान इन्द्रिय अन्तःकरण उत्पन्न हुआ ७०

पांच कर्मेन्द्रिय - राजस अंश से -

इन पांचो तत्वों के रजोगुण भाग से
पंच कर्मेन्द्रिय उत्पन्न हुई।

आकाश के तत्व के रजोगुण से वाक् इन्द्री
वायु के रजोगुण भाग से - हाथ इन्द्री।
अग्नि तत्व के रजोगुण भाग से - पैर (पांव)
जल के तत्व के रजोगुण भाग से उपस्थ
मूत्रेन्द्रिय उत्पन्न हुई।
पृथ्वी तत्व के रजोगुण भाग से - गुदा।
गुदेन्द्रिय उत्पन्न हुई।

और इन पांचों तत्वों के रजोगुण को मिलाया
तब पांचों प्राणों की उत्पत्ति हुई।
इस प्रकार पांच कर्मइन्द्री और पांच प्राणों को
मिलाया तब दस तत्व पंचमहाभूतों के
राजस अंश से उत्पन्न हुए। सात्विक अंश
के १० और राजस अंश के दस दोनों का
योग ३० बीस तत्वों के उत्पन्न हुए।

१४ त्रिपुटी करण

पंचज्ञान इन्द्री. पंचकर्म इन्द्री. ४ अन्तःकरण ये - १४ त्रिपुटी वो पंचज्ञान इन्द्री त्रिपुटी

इन्द्रिय	देवता	विषय
अध्यात्म	अधिदेव	अधिभूत
श्रोत	दिशा	शब्द.
त्वचा	वायु	स्पर्श
चक्षु.	सूर्य	रूप
रसना	वरुण	रस
घ्राण	अश्वनीकुमार	गन्ध

— पांच कर्म इन्द्री

वाक	अग्नि	वचन बोलना
हस्त	इन्द्र	लेना देना
पाद	वामनजी	चलना
उपस्थ	प्रजापति	रति भोग
गुदा —	यम —	मलत्याग

— चार अन्तःकरण.

मन चन्द्रमा संकल्प विकल्प। बुद्धि ब्रह्मा निश्चय करना

। चित्त वासुदेव चिन्तन करना।

अहंकार रुद्र अहंपना।

चारभ्ल: करण

नाम देवता कार्य

मन - चन्द्रमा - संकल्प विकल्प।

बुद्धि - ब्रह्मा - निश्चयकरना

चित्त = वासुदेव चिन्तनकरना

अहंकार - रुद्र अहंपना।

एतेषां पंच तत्वानेभ्य नामसांख्यात।
पंचीकृत पंचतत्वों से मतलब
अर्थ इनपांचों तत्वों के तामस
तमोगुणअंश से पंचीकृत अर्थात
पंचीकरण हो करके पंचमहाभूत
उत्पन्न हुए।

पंचीकरण एक एकभूतका आधा भाग
और आधेके चारभागकरे जिस प्रकार
आगे नक्शेमें दिखाई है

(पंचीकरण)

१	आकाश	॥)	ɔ	ɔ	ɔ	ɔ
	वायु	॥)	ɔ	ɔ	ɔ	ɔ
	अग्नि	॥)	ɔ	ɔ	ɔ	ɔ
	जल	॥)	ɔ	ɔ	ɔ	ɔ
	पृथ्वी	॥)	ɔ	ɔ	ɔ	ɔ

पंचमहाभूत	आकाश	वायु	अग्नि	जल	पृथ्वी
आकाश	॥)	ɔ	ɔ	ɔ	ɔ

पंच महाभूत	आ०	वायु	अग्नि	जल	पृथ्वी
	॥)	॥)	॥)	॥)	॥)

आकाश — आकाश ॥) वायु ɔ अग्नि ɔ जल ɔ पृथ्वी ɔ

वायु ॥) — आ० ɔ अग्नि ɔ जल ɔ पृथ्वी ɔ

अग्नि ॥) — आ० ɔ वायु ɔ जल ɔ पृथ्वी ɔ

जल ॥) — आ० ɔ वायु ɔ अग्नि ɔ पृथ्वी ɔ

पृथ्वी ॥) — आ० ɔ वायु ɔ अग्नि ɔ जल ɔ

स्थूल-शरीरं किम्?

पंचीकृत पंचमहाभूतैः कृतं सत्कर्मजन्यं सुख दुःखादि भोगायतनं शरीरम् अस्ति जायते वर्धते विपरिणमते अपक्षीयते, विनश्यतीति ॥ ष[ड्] विकार वदेतत् स्थूल शरीरम्।

पंचीकरण किये हुए जो पंचमहाभूत तिनसे रचा हुआ पुण्य व पापरूपी कर्मों का फल सुख दुःखादि को भोगनेवाला यह स्थूलशरीर जो अस्ति कहिये मौजूद है जायते फिर पैदा होता वर्धते दिन रव बढ़ता है अपक्षीयते शरीर घटता जाता है क्षीण होता है विनश्यति क्षीण होते होते नष्ट हो जाता है विपरीतमते बालपन से जवानी जवानी से बुढ़ापा बाद में शयत हो जाता है

छः विकार वाला स्थूल शरीर है

(सूक्ष्मशरीरं किम्)

अपंचीकृतपंचमहाभूतैः कृतं सत्कर्म जन्यं सुख दुःखादि भोगसाधनं पंच ज्ञान इन्द्रियाणि पंच कर्म इन्द्रियाणि पंच प्राणादयः मनश्चैकं बुद्धिश्चैका एवं सप्तदशाकलाभिः सह यत्तिष्ठति तत्सूक्ष्म शरीरम् ॥

अपंचीकृत अर्थात पंचीकरण से सम्बंधन रखनेवाला और ऐसे पंच महाभूतों के द्वारा निर्माण किया हुआ और पुण्य व पापरूपी कर्मों से उत्पन्न सुख दुःख आदि जो भोग उनका साधनमात्र फिर कैसा है। इसमें पांच ज्ञान इन्द्री पांच कर्म इन्द्री और पांच प्राण और मन तथा बुद्धि इस प्रकार १७ सत्रह कलाओं के सहित जो स्थित है वह सूक्ष्मशरीर है यह प्रत्येक देहधारी के अन्दर व्याप्त है।

स्वरूपका अज्ञान तथा निर्विकल्परूप
जो है वही कारणशरीर है।

जाग्रत - स्वप्न सुषुप्ति

जाग्रत - ज्ञानइन्द्रियों द्वारा जो काम
किया किया जाता है और
जो कुछ काम होता है जाग्रत
अवस्था में होता है अभिमानी विश्व

स्वप्न - जाग्रत अवस्था में जो हम देखते
हैं व्यवहार करते हैं वही सूक्ष्म
रूपसे वासना से स्वप्न में दिखता
है - इसका अभिमानी तेजस है

सुषुप्ति - स्वप्नरहित अवस्था
आनन्दसे सोया मैं कुछ नहीं जानता
इन्द्रियोंका आनन्द निद्रा के समय अनु
भव किया शांतरूप - इसका अभि-
मानी प्राज्ञ

(पंचकोष)

जैसे शरीरको अन्न चाहिये अन्न मिलेगा तो प्राण रह सकेंगे। प्राण रहने पर मन इच्छा वस्तुका संकल्प-विकल्प करता है उस वस्तुका निश्चय करना विज्ञान का कार्य है विज्ञान होने पर आनन्द मालूम होता है। इसलिये ये पंच कोश हैं।

अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय आनन्दमय ऐसे - पंच कोश हैं।

(अन्नमय: क: ? - अन्नरसे-

उत्तर- अन्नरसेनैव भूत्वा अन्नरसेनैव वृद्धिं प्राप्य अनुरूप शरीरं यद्भवति तदन्नमय कोश: स्थूल शरीरम्।

। अन्न के रस से उत्पन्न होकर तथा अन्न के रस से ही वृद्धि को प्राप्त पश्चात वही अन्न रूप धारण कर पृथ्वी में लीन हो जाता है यह क्रिया अन्नमय कोश के द्वारा होती है तथा अन्नमय कोश जिसके आधार से रहता है

प्राणमयः कोशः — प्राणमय किसे कहते हैं
उत्तर- प्राणादि पंच वायवः वागादीन्द्रिय — पञ्चकं प्राणमयः।
अर्थ- प्राणादि पांच वायु (प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान) यह पांचो प्राण - पांचो कर्मेन्द्रिय मिलकर प्राणमय कोश कहलाता है इसे ही क्रियाशक्ति कोश कहते हैं सम्पूर्ण क्रिया प्राणमय कोश से ही होती है।

मनोमयः कोशः कः ?
उत्तर - मनश्च ज्ञानेन्द्रियं पञ्चकं मिलित्वा भवति स मनोमय कोशः।
एक मनेन्द्रिय तथा पांचो ज्ञानेन्द्रिय मिलकर मनोमय कोश (मन और 5 ज्ञानेन्द्रिय)

विज्ञानमयः कः ?
बुद्धिर्ज्ञानेन्द्रियं पंचकं मिलित्वा यो भवति स - विज्ञानमय कोशः।
एक बुद्धि तथा पांचो ज्ञानेन्द्रिय मिलकर विज्ञानमय कोश होता है। इस कोश से ज्ञाता स्वरूप ...

शंका- आत्मा ~~कौन~~ कौनहै क्र. १
अर्थ. आत्माका स्वरूप क्याहै
समाधान सच्चिदानन्द स्वरूप.
सत् । चिद् आनन्द ।
। सत्किसे- सत् किसे कहते हैं।
उत्तर- कालत्रयेपितिष्ठतीति सत्
अर्थ- जो तीनों कालों (भूतवर्तमानभविष्यत)
में निवास करता हुआ एकरूप रहे घटेबढे
नहीं उसे सत् कहते हैं।
। चित् किसे ? . जो ज्ञान स्वरूप है
ज्ञानस्वरूप:
जो ज्ञानस्वरूपहै जैसे घट- पटादि पदार्थोंका
जानने वाला तथा अपना अस्तित्व जमाने
वाला और चैतन्य स्वरूप ऐसा साक्षात्
ज्ञान चित्पदार्थका लक्षण है।
आनन्द। क्र: १ - आनन्द किसे कहते हैं
समाधान - सुखस्वरूप०।
दुःखरूपी प्रपंचोसे रहित और सुख
स्वरूप जो आनन्द वही ब्रह्म स्वरूप है
आत्मा ...

जीवन्मुक्त किसे कहते हैं —
उत्तर न मैं ब्राह्मण हूं न क्षत्रिय वैश्य न शूद्र हूं न मैं देह हूं मैं तो सच्चिदानन्दस्वरूप हूं। स्वयं प्रकाशरूप मेरे ही स प्रकाश से सब प्रकाशित होते हैं सम्पूर्ण प्राणियों के अन्तःकरण में स्थित रहकर देह इन्द्रियादि की प्रेरणा करने वाला सम्पूर्ण प्राणियों के अन्दर व बाहर भीतर व्यापक हूं ऐसा जो जान लेता है वही जीवन्मुक्त है

अपरोक्षज्ञान — ऐसा सम्पूर्ण ब्रह्मस्वरूप में विराजमान है

अपरोक्ष ज्ञान. मैं सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म ही हूं।

अपरोक्ष ज्ञान वाला सम्पूर्ण कर्मों से मुक्त हो जाता है

कर्म कितने प्रकार के होते हैं ?
उत्तर - कर्म तीन प्रकार के होते हैं यथा
(1) अगामी (2) संचित (3) प्रारब्ध
अगामी कर्म किम् ?
अगामीकर्म - ज्ञानोत्पत्त्यनन्तरं ज्ञानी
देहकृतं पुण्यपापरूपं कर्म यदस्ति
तदागामीत्यभिधीयते।
अर्थ - जैसा पहिले कहा है ऐसा ज्ञान
होने के बाद ज्ञानी पुरुष इस देह करके जो
पुण्य व पापरूपी कर्म करता है वह
अगामी कर्म है।
प्रश्न - संचितकर्म किम् ? संचितकर्म
किसे कहते हैं?
उत्तर - अनन्तकोटि जन्मनां बीजभूतं
सत् यत्कर्म जातं पूर्वार्जितं तिष्ठति
तत्संचितम् ज्ञेयम्।
उत्तर - असंख्य जन्मों के किये हुए जो
कर्म जीवात्मा के साथ स्थित हैं
उन्हें संचित कर्म कहते हैं।

प्रश्न - प्रारब्ध कर्म किसे ? प्रारब्धकर्म कौन है
उत्तर - पूर्वजन्ममें किसे हुए पुण्य व पाप रूपी कर्मों के फल स्वरूप सुख-दुःख को जो इस जन्ममें भोग है वह प्रारब्ध कर्म कहलाता है। जो स्थूल शरीर के द्वारा सुख दुःख भोगे जाते हैं वह प्रारब्ध कर्म तो भोगने से ही नाश को प्राप्त होते हैं।
अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाऽशुभम्
नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्प कोटिशतैरपि।
। ज्ञानी को भी कर्म भोगने पड़ते हैं, ज्ञानी के कर्म कैसे नष्ट हो जाते हैं।
अहं ब्रह्मेति विज्ञानात् कल्पकोटिशतार्जितम्
संचितं विलयं याति प्रबोधात्स्वप्नकर्मवत्।
। जिसे अहं ब्रह्मास्मि ऐसा ज्ञान हो गया है उसे जाग जाने पर स्वप्न अवस्था के कर्म लीन हो जाते हैं। - वैसे ही मैं ब्रह्म हूं ऐसा ज्ञान होते ही करोड़ों कल्पों के कर्म-

नष्ट हो जाते हैं।

ज्ञानामृतेन तृप्तस्य कृतकृत्यस्य योगिनः।
नैवास्ति किंचित्कर्तव्य मस्तिचेन्न स तत्त्ववित्।
अर्थ- जो ज्ञानी पुरुष ज्ञानरूपी अमृत से तृप्त और कृतकृत्य है उसको किंचित भी कर्तव्य नहीं है। यदि वह कर्तव्य मानता है, तो वह तत्त्ववित नहीं है।

तत्त्वज्ञानोदयादूर्ध्वं प्रारब्धं नैव विद्यते।
देहादीनामसत्यत्वाद्यथा स्वप्नो विबोधतः।
अर्थ- जाग जाने पर जैसे स्वप्न नहीं रहता वैसे ही देहादि असत्य होने के कारण ज्ञानोदय के पश्चात् प्रारब्ध नहीं रहता। अपरोक्षानुभूति

कर्म जन्मान्तरकृतं प्रारब्धमिति कीर्तितम्।
तत्तु जन्मान्तराभावात्पुंसो नैवास्ति कर्हिचित्।
अर्थ- जन्मान्तर में किया हुआ कर्म ही प्रारब्ध कहलाता है अतः (ज्ञानी की दृष्टि में) जन्मान्तर का अभाव होने से वह किसी अवस्था में नहीं है। (अपरोक्षानुभूति)

याति

ज्ञानी के कर्म देहसे होते हैं उन्हें नहीं
भोगना पड़ता. पुण्यकर्म पापकर्म स्वभाव
से होते हैं. ज्ञानी आत्मस्थिति में रहने से
इनका प्रभाव नहीं होता. ज्ञानी ऐसा-
समझता है। तत्त्ववित्तु महाबाहो गुण-
कर्म विभागयोः। गुणा गुणेषु वर्तन्त
इति मत्वा न सज्जते ॥ —

(ज्ञानी के प्रारब्धकर्म इस प्रकार क्षय-
होते हैं।

/ किञ्च ये ज्ञानिनं स्तुवन्ति भजन्ति
अर्चयन्ति तान् प्रति ज्ञानिना कृत-
मागामि पुण्यं गच्छति। (गच्छति)
ये ज्ञानिनं निन्दन्ति द्विषन्ति दुःखप्रदानं
कुर्वन्ति तान् प्रति ज्ञानिकृतं सर्वमागामि
क्रियमाणं यदवाच्यं कर्म पापात्मकं
तद्गच्छति ॥

जो संसारी लोग ज्ञानी की प्रशंसा सेवा करते
हैं सत्कार करते हैं उनको ज्ञानी का
किया हुआ आगामी पुण्य प्राप्त

होता है। और जो मनुष्य ज्ञानी की निंदा
करते हैं तथा द्वेष करते हैं या ज्ञानी को
दुःख देता है उनको ज्ञानी के किये हुए
आगामी पाप कर्म प्राप्त होते हैं
ज्ञानी के सेवक श्रद्धालु जो हैं उनको पुण्य
आगामी मिलते हैं।
और जो ज्ञानी की निन्दा द्वेष दुःख देने वाला
ज्ञानी के आगामी पापकर्म मिलते हैं।
जब तक ज्ञानी का शरीर संसार में रहता
है तब तक पुण्य तथा पाप उत्पन्न
होते हैं परन्तु उनका फल ज्ञानी को नहीं
भोगना पड़ता।
पुण्य तो ज्ञानी की सेवा करने वाले को
और पाप ज्ञानी के निन्दक द्वेष करने
वालों को प्राप्त होता है।
तनुं त्यजतु वा काश्यां श्वपचस्य गृहेऽथवा
ज्ञान सम्प्राप्ति समये मुक्तोऽसौ विगताशयः।
ज्ञानी कहीं भी मरे वह मुक्त है।

चैतन्य जड़ ईश्वर
चैतन्य - जो ज्ञान स्वरूप है। तिसकु
अन्य मन इन्द्रियाँ कोई नहीं जान सके -
सो चैतन्य है।
जड़ - जो आपको न जाने और दूसरे को
भी न जाने।
जीव चिदाभास युक्त अन्तःकरण सहित
कूटस्थ - चैतन्य जीव है।
ईश्वर चिदाभास युक्त माया सहित ब्रह्म
चैतन्य - सो ईश्वर है
प्रपञ्च समष्टि और व्यष्टि रूप तीन शरीर
(स्थूल सूक्ष्म कारण) पंचकोश तीन
अवस्था (जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति) आदि
नामरूप प्रपंच है।
(बुद्धि में आभास और कूटस्थ जीव यही त्वंपद का
वाच्यार्थ है। यही कर्ता भोक्ता है। त्वंपद का
लक्ष्यार्थ जीव का कूटस्थ है।
तत्पद का वाच्यार्थ ईश्वर लक्ष्यार्थ शुद्ध ब्रह्म -
त्वंपद का वाच्यार्थ - बुद्धि आभास सहित ...
लक्ष्यार्थ ... आभास रहित ...

(वाच्यार्थ-लक्ष्यार्थ के विषय में)

वैश्वानर. सूत्रात्मा ईश्वर. तत्पद का वाच्यार्थ है।
और ब्रह्म तत्पद का लक्ष्यार्थ है।

विश्व तैजस प्राज्ञ ये तीनों त्वं पद का. वाच्यार्थ है।
और कूटस्थ. त्वं पद का लक्ष्यार्थ है।

ॐ कार के चार पाद	ब्रह्म के चार पाद	आत्मा के चार पाद
अकार	विराट	विश्व
उकार	हिरण्यगर्भ	तैजस
मकार	ईश्वर	प्राज्ञ
ॐ अमात्रा	ब्रह्म	तुरीय

इनको अकार को उकार में. विराट हिरण्यगर्भ में. विश्व तैजस में। उकार मकार में हिरण्यगर्भ ईश्वर में तैजस प्राज्ञ में। मकार अमात्रा में ईश्वर ब्रह्म में प्राज्ञ तुरीय में लीन करे

तत् - ईश्वर जगतकी कारणता उपाधि है यही
वाच्यार्थ है, कारण उपाधी त्याग कर-
शुद्ध लक्ष्यार्थ है।
त्वं पद - अहंता ममता उपाधिवाला जीव
वाच्यार्थ है और अहंता ममता
उपाधि त्याग कर शुद्ध चैतन्य -
लक्ष्यार्थ है।
जाग्रत में व्यष्टि की विश्व संज्ञा
जाग्रत में समष्टि की विराट संज्ञा
स्वप्न में विश्व की - तैजस संज्ञा
स्वप्न में विराट की हिरण्यगर्भ संज्ञा
सुषुप्ति में तैजस की - प्राज्ञ संज्ञा
सुषुप्ति में हिरण्यगर्भ की ईश्वर संज्ञा
तुरीय में - दोनों का अभाव केवल
चैतन्य ही है।

विश्व — स्थूलशरीर

बंध्यो कीर मर्कटकी नाई

बंध्यो - अर्थात् कूटस्थ प्रतिबिम्ब द्वारा मायासे बंधसागया है. (घटाकाश जलाकाश द्वारा जलसे बंध जाता है. जिसप्रकार प्रतिबिम्ब जलके दोषों से दूषित होता है. चंचल होनेसे चंचल होता है. उछलनेसे उछलता है गिरनेसे गिरता है दौड़नेसे दौड़ता है. निदान बंध जाता है उसी-प्रकार जीव भी मायासे बंध जाता है.
अर्थात् बंधासा मालूम होता है.

आत्मा शुद्ध निर्मल निश्चल. शाश्वत - एकरस - घटता बढ़ता नहीं एकसमान है परन्तु उपाधिसे बड़ा छोटा दिखता है - जैसे जल सर्वत्र एकसा भरा है पर जल क्यारियों में जाता है तो गोल क्यारी में गोल लम्बी क्यारी में लम्बा और चौकोन क्यारी में चौकोन मालूम होता है — और उपाधि रहित शुद्ध चैतन्य निर्मल आदि आपही शुद्ध रहजाता है॥ —

विश्व — स्थूलशरीर
तेजस — सूक्ष्मशरीर
प्राज्ञ — कारणशरीर
त्त्पद वाच्यार्थ सगुणब्रह्म यानें ईश्वर
और लक्ष्यार्थ निर्गुण ब्रह्म है।
त्वंपद का वाच्यार्थ जीव और लक्ष्यार्थ कूटस्थ है
जिस प्रकार महाकाश घटाकाश में भेद नहीं है
उसी प्रकार निर्गुण ब्रह्म और कूटस्थ में
भेद नहीं है॥ जीव भयो संसारी -
जीव अपने सहज स्वभाव सच्चिदानन्द रूप छोड़कर
ईश्वरांश के ऐश्वर्य को खोकर संसारी दिखाई पड़ा
(१) लिंगदेह (२) लिंगदेह में स्थित चिच्छाया और (३)
अधिष्ठान चेतन तीनों मिलकर - जीव कहलाये
इस प्रकार तीन प्रकार के जीव हुए, (१) पारमार्थिक
(२) प्रातिभासिक (३) व्यवहारिक। पारमार्थिक जीव
कूटस्थ है। और प्रातिभासिक जीव चित जड़ की
ग्रन्थि वाली प्रतिबिम्ब है। और व्यवहारिक जीव
लिंगदेह वाला है। इसी तीनों को संसारी कहा
इसी का परलोक में आना जाना लगा रहता -
स्थूलशरीर छूटता रहता है - पर यह लिंग शरीर
नहीं छूटता॥

जहल्लक्षणा लक्षणावृत्ति

जहल्लक्षणा - जहाँसम्पूर्ण वाच्य अर्थका त्यागकरिके वाच्यार्थ के सम्बन्धीका ग्रहण होवे।
जैसे - गाई का बाड़ो कहे है गंगा विषै गाई का बाड़ा है यहाँ गंगा प्रवाह में नहीं होसकता इसमें सम्पूर्ण वाच्य अर्थ का त्याग करि के गंगा के सम्बन्धी तीरका ग्रहण करना चाहिये

अजहल्लक्षणा - जहाँ वाच्य अर्थ का त्याग न करके तिसके सम्बन्धी का ग्रहण करे। अजहल्लक्षणा है
जैसे - शोण दौड़ता है। शोण पद का वाच्य अर्थ लाल है रंग है - लाल रंग का दौड़ना संभव नहीं। याते लाल रंग का घोड़ा दौड़ता है। यह अजहल्लक्षणा है।

भागत्याग लक्षणा - जहाँ विरोधी का कछु वाच्य भाग का त्याग करिके तिसके सम्बन्धी अविरोधी कछुक वाच्य भाग ग्रहण होवे।
जैसे - पहिले किसी देशकाल में देख्या पुरुष किसी और देश काल विषै देखने में आवे तब देखने वाला पुरुष कहता है। जो दूर देश तिस भूतकाल विषै जो पुरुष देखाथा सो पुरुष इसी समीप देश में इस वर्तमान काल विषै आया है
इसमें भूतकाल वर्तमान की एकता नहीं हो सकती
इसमें पुरुष ...

(1) प्रमाणवृत्ति तीन प्रकार की है -
प्रत्यक्ष - जिसमें इन्द्रियों द्वारा चित्त की वृत्ति
बाहर निकलकर बाह्य वस्तुओं से
संयोग करके आत्मा को उस पदार्थ का
ज्ञान कराती है उसका नाम प्रत्यक्ष प्रमाण है।
(2) अनुमान (जिसका अनुमान किया जाता
है) पदार्थ को समान गोत्र वालों
में मिलने वाले और भिन्न जाति पदार्थों से
पृथक करने वाले सम्बन्ध को प्रकाशकरने
वाली प्रधान वृत्ति को अनुमान कहते हैं।
(3) आगम - आप्त अर्थात धर्माधर्म तथा सत्य
के विवेकी सज्जन महर्षि जो अच्छे
प्रकार से देखकर या अनुमान करके
परोपकार के निमित्त जो उपदेश करते
हैं, उसका नाम आगम प्रमाण है।

अर्थापत्ति संभवो ऽभावो प्रतिभोतिह्यो
प्रमाणानि ।।
अर्थापत्ति, संभव, अभाव, प्रतिभा, ऐतिह्य
उपमान ।
अर्थापत्ति - भावों को अनुमान के द्वारा ज्ञान होना
जैसे मोटा देवदत्त दिन को नहीं खाता तो
रात को खाता है।
(२) संभव - वाक्यों से ज्ञान होना जैसे
चार कउवा लवणा है।
अभाव चार प्रकार का होता है।
प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, इतरेतराभाव
अत्यन्ताभाव।
(३) प्रागभाव - जैसे कुमार अवस्था में वृद्धत्व
नहीं है बुढ़ापे में
प्रध्वंसाभाव - घट पटनाश से अभाव
इतरेतर एक का एक में नहीं होना
जैसे घट में पट नहीं।
अत्यन्ताभाव, नरशृंग, मनुष्य में सींग का
अभाव - सींग नहीं होते
(४) प्रतिभा - सुन्दरता का ज्ञान होता है
होती है

ऐतिह्य - जैसे इस वृक्ष में यक्षि रहती है।
उपमान - गौ सदृश गवय, समुद्र सदृश तड़ाग।
लक्षण + अव्याप्ति, अतिव्याप्ति और असम्भव जिसमें तीन दोष पाये जावें वह प्रमाण नहीं है।
गौ - कपिला होती है इसमें अव्याप्ति दोष है बहुत गौ कपिला नहीं होती लाल सफेद भी होती है।
गौ सींग वाली होती है इसमें अतिव्याप्ति दोष है क्योंकि भैंस बकरी हिरन आदि सींग वाले होते हैं।
गौ - एक खुरवाली होती है इसमें असम्भव दोष है।

ग्रंथ में चार अनुबन्ध होते हैं। सम्बंध (1) अधिकारी (2) विषय (3) संबंध (4) प्रयोजन
(1) अधिकारी - साधन सम्पन्न साधन चतुष्टय वाला
(2) विषय - जीव ब्रह्म की एकता का विषय है।
(3) सम्बंध - इसका किससे सम्बन्ध है बोधक वोद्ध सम्बन्ध है।
(4) प्रयोजन - इसका क्या प्रयोजन है। सब दुःखों की निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति
जैसे - [illegible]

जैसे रसोईघर में। अन्न का भूखा तो अधिकारी
अधिकारी - अन्न का भूखा अधिकारी
विषय - अन्न का स्वाद विषय
सम्बंध - अन्न का मुख आदि संयोग सम्बन्ध
प्रयोजन - भूख को दूर करना प्रयोजन
अध्यारोप - कल्पना करना जैसे रस्सी में सर्प
अपवाद - कल्पना को हटाना अपवाद कहते हैं।
जैसे रस्सी में सर्प की कल्पना की उसे विचार
से हटा दिया।
अजातवाद
तूला-माया

(ईश्वर और जीव)

ईश्वर	जीव
(१) सर्वशक्तिपना	(१) अल्पशक्तिपना
(२) सर्वज्ञपना	(२) अल्पज्ञपना
(३) व्यापकपना.	(३) परिच्छिन्नपना
(४) एकपना	(४) नानापना
(५) स्वाधीनपना	(५) पराधीनपना
(६) समर्थपना	(६) असमर्थपना.
(७) परोक्षपना	(७) अपरोक्षपना
(८) मायोपाधिपना	(८) अविद्याउपाधिवानपना

// राम गीता माहात्म्यम् ॥

श्रीराम गीता माहात्म्यं, कृत्स्नं-
जानाति शंकरः । तदर्द्धं गिरिजा
वेत्ति. तदर्द्धं वेदपारगः मुने ॥१॥

तत्ते किञ्चित् प्रवक्ष्यामि. कृत्स्नं
वक्तुं न शक्यते, यज्ज्ञात्वातत्क्षणाल्
लोक श्चित्तशुद्धि मवाप्नु यात ॥२॥
श्रीरामगीता यत्पापं न नाशयति नारद
तन्न नश्यति तीर्थादौ लोके क्वापि कदाचन
तन्न पश्याम्यहं लोके मार्गमाणोऽपि
सर्वदा ॥ ३ ॥ ——

रामेणा निजसिंधु मुन्मथ्याल्यो दत्तां-
मुदा । लक्ष्मणा यार्पितां गीता सुधां
पीत्वामरो भवेत ॥४॥

जमदग्नि सुतः पूर्वं कार्तवीर्य
वधेच्छया। धनुर्विद्यामभ्य
सितुं महेश स्यान्तिके (स्यान्तिके)
वसन् (५)

अधीयमानां पार्वत्या रामगी
प्रयत्नतः। श्रुत्वा गृहीत्वणु, ना
पठन नारायण कल्मषात् ॥६॥

ब्रह्महत्यादि पापानां निष्कृतिम्
यदि वांछति। रामगीतां मास
मात्रं, पठित्वा मुच्यते नरः

दुष्प्रति ग्रह दुर्भोज्य दुरालापादि संभवम्। पापं यत्कीर्तनात् सद्यो गीता, विनाशयेत॥
८॥

अगेण

शालग्राम शिलाग्रे च, १
तुलस्यश्वत्थ संनिधौ,
यतीनां पुरतस्तद्द्राम गीतां
पठेत्तु यः ॥ (पुरस्तदव रामगीतां)
स तत्फलमवाप्नोति यद्वाचोऽ
पि न गोचरम् ॥ ९ ॥

राम गीतां पठं कृत्वा यः
श्राद्धे भोज येद् द्विजान् (येद्विजान्)
तस्यते पितरः सर्वे यान्ति
विष्णोः परं पदम् ॥ १० ॥
एकादश्यां निराहारो नियतो द्वादशी
दिने । स्थित्वाऽगस्त्य तरोर्मूले,
राम गीतां पठेत्तु यः ॥ स एव
राघवः साक्षात् सर्वे देवैश्च
पूज्यते ॥ ११ ॥

बिना ज्ञानं ~~बिम~~ बिना ध्यानं,
बिना तीर्थावगाहनम् । रामगीतां
नरो ध्यात्वा अनन्त फल
मश्नुते ॥ १२॥

बहुना किमिहोक्तेन, शृणु-
नारद तत्वतः।
यस्य विज्ञान मात्रेण ।
वांछितार्थ फलं लभेत् ॥ १३